कामिल राह

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

सलतान महम्मद पाल

कामिल राह

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

सलतान महम्मद पाल

kāmil rāh. maiṅ kyoṅ al-masīḥ kā pairokār ho gayā.

The Perfect Way. Why I Became a Follower of al-Masih

by Sultan Muhammad Paul
(Urdu—Hindi script)

© 2018 Chashma Media
published and printed by
Good Word, New Delhi

Bible quotations are from UGV.

for enquiries or to request more copies:
askandanswer786@gmail.com

एक गुज़ारिश

इस रिसाले को पढ़ते वक़्त तीन बातों का ख़याल रखें :

- रूहानी तौर पर इनसान को किस चीज़ की ज़रूरत है?
- कौन-सा मज़हब यह चीज़ मुहैया करता है?
- किताबे-मुक़द्दस को किस तरह पढ़ना मुनासिब है?

(सुलतान)

मेरा वतन

मेरा वतन जिस पर मुझे बहुत फ़ख़्र है अफ़ग़ानिस्तान है। मेरे वालिद मरहूम बरकी राजान के रहनेवाले थे जो कि क़ाबुल से बीस-पच्चीस कोस जुनूब में वाक़े है। मैं 1884 में पैदा हुआ।

मेरे वालिद मरहूम का नाम पायंदा ख़ान था। फ़ौजी ओहदे के एतबार से कर्नल थे। उनका ख़िताब बहादुर ख़ान था। उनकी दो बीवियाँ थीं। पहली बीवी मेरे वालिद के क़रीबी रिश्तेदारों में से थीं। उनसे तीन लड़कियों के सिवा कोई बेटा पैदा न हुआ। तब उनकी सैयिद महमूद आक़ा की लड़की से शादी हुई ताकि नसल ख़त्म न हो जाए। नई बीवी दौलत और बुज़ुर्गी के लिहाज़ से क़ाबुल के चंद मशहूर लोगों में से थे।उनसे मैं और मेरा छोटा भाई ताज मुहम्मद ख़ान पैदा हुए।

एक दिन अमीर अब्दुर्रहमान ख़ान रूस से आकर क़ाबुल के तख़्त पर बैठ गए। कुछ अरसे के बाद उन्होंने एक ही ख़ानदान के छः बुज़ुर्गों को जो मुल्क के मज़बूत रुकन थे क़त्ल करवाया। इनमें मेरे वालिद भी शामिल थे।

एक और आफ़त यह आई कि मेरे दो मामूँ जो शहज़ादा सरदार ऐयूब ख़ान के साथ क़ंदहार में थे गिरिफ़्तार होकर क़ाबुल भेज दिए गए। अमीर अब्दुर्रहमान ख़ान ने मेरे दो क़ैदी मामुओं को हिंदुस्तान की तरफ़ जिलावतन कर दिया। इसके कुछ अरसे के बाद मेरे तीसरे मामूँ भी अपनी वालिदा और मुलाज़िमीन के साथ हिंदुस्तान में आ गए। लेकिन बाक़ी कुल अज़ीज़ क़ाबुल ही में रहे।

हिंदुस्तान आने के बाद मेरे मामूँ हसन अबदाल ज़िले अटक में जा बसे। लेकिन चंद साल के बाद हमारे कुल ख़ानदान को क़ाबुल वापस आने की इजाज़त मिल गई। सो सिवाए मेरे और मेरे तीन मामुओं के सबके सब अपने मुल्क वापस चले गए।

मामुओं से जुदाई

कुछ अरसे बाद मैं अपने मामुओं के घर को ख़ैरबाद कहकर पेशावर गया। वहाँ मैंने अमीर अब्दुर्रहमान को एक ख़त भेजा कि मुझे क़ाबुल आने की इजाज़त दी जाए। अमीर ने जवाब दिया कि बग़ैर ज़मानत दिए तुम नहीं आ सकते। तब मैंने यारकंद के रास्ते से बुख़ारा जाने का फ़ैसला किया। वजह यह थी कि मेरे बहनोई क़ाबुल से भागकर बुख़ारा में रहने लगे थे।

जब मैं कश्मीर पहुँचा तो सर्दियों का मौसम शुरू हो चुका था और सफ़र ख़तरनाक हो गया था। वहाँ से हिंदुस्तान का रुख़ करना पड़ा।

ईसाइयों के साथ मेरा पहला मुबाहसा

दहली पहुँचकर मैं मदरसे फ़तहपूरी में अरबी सीखने के लिए दाख़िल हुआ।

उन्हीं दिनों में एक रोज़ मैं अपने चंद दोस्तों के साथ चाँदनी चौक की सैर करके मदरसे की तरफ़ वापस आ रहा था कि मदरसे से कुछ फ़ासिले पर बहुत भीड़ लगी देखी। भीड़ को देखकर हम भी उधर रवाना हुए। क्या देखते हैं कि ईसाइयों के एक मुनाद और हमारे मदरसे के एक तालिब-इल्म के दरमियान तसलीस पर बहस हो रही है। मुनाद क़ुरान शरीफ़ का हवाला पेश कर रहा था कि

> وَنَحنُ أَقرَبُ إِلَيهِ مِن حَبلِ الوَرِيدِ
> हम उस (इनसान) से उसकी रगे-जान से भी ज़्यादा क़रीब हैं (सूरा क़ 16)

वह यह कह रहा था कि अगर ख़ुदा वाहिद मुतलक़ होता तो “हम” न कहता बल्कि “मैं।” तालिब-इल्म कुछ बेमानी-सा जवाब दे रहा

था। मेरे दोस्तों ने मुझे जवाब देने का इशारा किया। आगे बढ़कर मैंने कहा कि "हम" इस मक़ाम पर सिर्फ़ ताज़ीमन इस्तेमाल हुआ है।

मेरी ज़िंदगी में ईसाइयों के साथ बहस करने का यह पहला मौक़ा था। उसी दिन से मेरे दिल में उन से मुबाहसा करने का इस क़दर शौक़ पैदा हुआ जिसका बयान नहीं कर सकता। यह सिर्फ़ शौक़ ही शौक़ न था बल्कि मज़हबी ग़ैरत इसके पीछे थी। उस वक़्त से मैं उन मशहूर किताबों को जो ईसाइयों के रद में लिखी गई हैं जमा करने लगा। मसलन मौलवी रहमतुल्लाह की इज़हारुल-हक़ और एजाज़े-ईसवी।

मुझे किताबे-मुक़द्दस दी जाती है

एक दिन एक अंग्रेज़ पादरी ने जो कि मुनादों के साथ आया करते थे मुझे अपना विज़िटिंग कार्ड देकर अपने बँगले पर आने की दावत दी। उसने मुझे अपने दोस्तों को भी साथ लाने की इजाज़त दी। चुनाँचे मैं अपने दो-तीन दोस्तों को साथ लेकर उनके बँगले पर गया। पादरी साहब निहायत तपाक के साथ पेश आए। चाय पीते वक़्त एक दिलचस्प मज़हबी गुफ़्तगू छिड़ गई। पादरी ने मुझसे मुख़ातिब होकर कहा, "क्या आप किताबे-मुक़द्दस पढ़ते हैं?"

मैंने कहा, “मैं किताबे-मुक़द्दस को पढ़कर क्या करूँगा? ऐसी मुहर्रफ़ किताब को कौन पढ़ेगा जिसको आप लोग हर साल बदलते रहते हैं?”

मेरे इस जवाब पर पादरी के चेहरे से अफ़सोस के आसार ज़ाहिर हुए। वह एक चोरी-छुपे मुसकराहट के साथ कहने लगे, “क्या हम ईसाई लोग सबके सब बेईमान हैं या ख़ुदा से नहीं डरते जो ख़ुदा के पाक कलाम में तबदीली करते और दुनिया को धोका देते हैं? जब मुसलमान यह कहते हैं कि ईसाई तौरातो-इंजील में तहरीफ़ करते हैं तो इसका यह मतलब है कि कुल ईसाई बेईमान और लोगों को गुमराह करनेवाले हैं। मुसलमानों का यह दावा कि पाक कलाम मुहर्रफ़ है सरासर ग़लत और बातिल है। इस क़िस्म का दावा उन मुसलमानों का है जो किताबे-मुक़द्दस और ईसाइयों के ईमान से नावाक़िफ़ हैं।”

यह कहकर पादरी ने मुझे किताबे-मुक़द्दस की दो जिल्दें दीं, एक फ़ारसी और दूसरी अरबी ज़बान में। साथ साथ उन्होंने ताकीदन कहा कि आप इनको ज़रूर पढ़ें। उनका शुक्रिया अदा करके हम वहाँ से रुख़सत हो गए।

मेरा किताबे-मुक़द्दस पढ़ने का तरीक़ा

मैं इस नीयत से किताबे-मुक़द्दस को पढ़ने लगा कि ईसाइयों और किताबे-मुक़द्दस पर नुकताचीनी कर सकूँ। मैं किताबे-मुक़द्दस को सिलसिलावार नहीं पढ़ता था बल्कि सिर्फ़ उन्हीं हवालजात को जो मुसलमान अपनी अपनी किताबों में देते थे।

बम्बई के मदरसा ज़करिया में दाख़िला

दहली में ईसाइयों के साथ मुबाहसा का मारका गरम रहा। फिर मैं बम्बई गया। इन्हीं दिनों में एक ज़बरदस्त आलिम मदरसा ज़करिया में मुक़र्रर हुए। उनका नाम मौलवी अब्दुल-वाहिद था। वह अफ़ग़ानिस्तान के सूबे जलालाबाद के रहनेवाले थे। यह सुनकर मैं मदरसा ज़करिया में दाख़िल होकर उनसे मंतिक़ और फ़लसफ़े की किताबें पढ़ने लगा। वह बाप की-सी शफ़क़त-भरी नज़र मुझ पर रखते थे। उन्होंने अपने कमरे के पास ही मुझे एक कमरा दिया ताकि मैं हर वक़्त उनसे मदद ले सकूँ।

ईसाइयों के साथ मुबाहसा

एक दिन मैं और मदरसे के चंद तालिब-इल्म सैर करते करते धोबी तालाब पहुँच गए। क्या देखते हैं कि चंद ईसाई मुनाद वाज़ कर रहे हैं। उनको देखते ही मेरा पुराना ज़ख़्म फिर ताज़ा हो गया और दहली का नक़्शा आँखों के सामने फिरने लगा। मैं आगे बढ़ने ही को था कि एक तालिब-इल्म मुझसे कहने लगा, "मौलवी साहब, जाने भी दीजिए। इन लोगों से बहस करना अपने वक़्त को ज़ाया करना है। यह बेचारे मुबाहसा करना नहीं जानते। इनको इसी बात की तनख़ाह मिलती है सो अपना फ़र्ज़ अदा करते हैं। इससे मुबाहसा करने में सिवाए नुक़सान के फ़ायदा कुछ भी नहीं।"

मैंने कहा, "आप नहीं जानते, पर मैं इन लोगों से ख़ूब वाक़िफ़ हूँ। अगरचे यह लोग मुबाहसा करना नहीं जानते लेकिन लोगों को गुमराह करने के तरीक़े ख़ूब जानते हैं। इसलिए हर एक मुसलमान पर फ़र्ज़ है कि इनके मकर और फ़रेब के जाल से भूले-भटके मुसलमानों को बचाए।"

यह कहकर मैं आगे हुआ और एतराज़ पर एतराज़ करना शुरू किया। उस तरफ़ से भी एतराज़ों की बौछाड़ होने लगी। बहुत देर तक सिलसिला जारी रहा लेकिन वक़्त न होने के सबब उस रोज़ बहस बंद हो गई।

मदरसे के तालिब-इल्म में इस बात का ख़ूब चर्चा हुआ और उनमें भी मुबाहसे का शौक़ पैदा होने लगा। हम हफ़्ते में दो बार बिलानाग़ा मुबाहसे के लिए आया करते थे। जब उन्होंने देखा कि हम बिलानाग़ा मुबाहसे के लिए आ रहे हैं तो इदारे के दो साहबान ने हमें अपने बँगले में आने की दावत दी। गुफ़्तगू के दौरान कहने लगे, "धोबी तालाब बहुत दूर है और आने-जाने में आप लोगों को बहुत तकलीफ़ होती होगी। अगर आप सचमुच तहक़ीक़ करना चाहते हैं तो हम आप लोगों के क़रीब एक कुतुब-ख़ाना खोल देंगे जिसमें हफ़्ते में एक बार शाम से लेकर जब तक आप चाहें मज़हबी बातों पर बहस करें।"

मैंने शुक्रिया के साथ उनकी इस राय को मंज़ूर किया। चुनाँचे उन्होंने पावधोनी में जो हमारे मदरसे के बहुत ही क़रीब थी एक कुतुब-ख़ाना खोल दिया, और हम मुक़र्ररा वक़्त पर पहुँचा करते थे।

ईसाइयों के ख़िलाफ़ नया इदारा

मैंने देखा कि मदरसे के तालिब-इल्म और बाहर के जानने वाले ईसाई मज़हब से नावाक़िफ़ हैं। साथ साथ उन्हें तक़रीर करने का कोई तजरिबा न था। तब मैंने एक अलहदा मकान किराए पर लेकर

एक अंजुमन बनाम नदवतुल-मुतकल्लिमीन जारी की। उसका मक़सद यह था कि लोगों को इस्लाम के मुख़ालिफ़ों और ख़ासकर ईसाइयों के साथ मुबाहसा करने के लिए तैयार किया जाए।

उस्ताद का मुझ पर नाराज़ होना

जब मेरे उस्ताद ने यह देखा कि मैं बहस-मुबाहसे में दिन-रात मसरूफ़ हूँ और सिवाए इसके और कुछ फ़िकर ही नहीं तो एक रात नमाज़ के बाद मेरे कमरे में तशरीफ़ लाए। मैं उस वक़्त इंजील का मुतालआ कर रहा था। पूछने लगे, "तुम्हारे हाथ में कौन-सी किताब है?"

मैंने जवाब दिया, "यह इंजील है।"

यह सुनकर वह नाराज़ होकर फ़रमाने लगे, "मुझे डर है कि कहीं ईसाई न हो जाओ।"

इस जुमले को सुनकर मैं सख़्त बेताब हो गया। अगरचे मैं अदब के लिहाज़ से कुछ कहना न चाहता था तो भी मेरे मुँह से निकल ही गया, "मैं किस तरह ईसाई हो जाऊँगा? क्या इंजील पढ़ने से कोई ईसाई हो जाता है? मैं इंजील इसलिए पढ़ता हूँ कि ईसाइयों की जड़ उखेड़ दूँ न कि ख़ुद ईसाई हो जाऊँ। मुनासिब था कि आप

मेरी तारीफ़ करते और मेरा दिल बढ़ाते न कि मेरा दिल तोड़ते या मेरा हौसला पस्त करते।"

तब उन्होंने कहा, "यह मैंने इसलिए कहा कि मैंने सुना है कि जो शख़्स इंजील पढ़ता है वह ईसाई हो जाता है। क्या तुमने नहीं सुना जो एक शायर ने कहा है,'जब तू इंजील पढ़ता है तो मुसलमानों का दिल इस्लाम से फिर जाता है'।"

मैंने कहा, "जो भी कहा गया है, ग़लत कहा गया है।"

ख़ैर, मुझे कुछ मज़ीद नसीहत करके मौलवी साहब अपने कमरे को वापस चले गए। कोई पाँच-छः साल तक यह दिलचस्प और रूहानी जंग जारी रही होगी।

मक्का और मदीना का प्रोग्राम

एक दिन मेरे दिल में यकायक हज का शदीद शौक़ उभर आया। मैं फ़ौरन सारा इंतज़ाम करके जहाज़ पर सवार होकर जेद्दा और जेद्दा से मक्का पहुँच गया। जब हज करने का दिन आ पहुँचा तो एहराम बाँधकर अरफ़ात गया। अरफ़ात का दिन अजीब दिलचस्प नज़ारा का दिन होता है। अमीरो-ग़रीब, शरीफ़ और कमीना सबके सब एक ही सफ़ेद चादर और तहबंद में लिपटे हुए नंगे सर और नंगे पाँव यों मालूम होते हैं कि क़ियामत का दिन है, कि सब मुरदे अपने

अपने कफ़नों समेत क़ब्रों से अपने आमाल का हिसाब-किताब देने के लिए निकले हैं। मेरी दोनों आँखों से आँसू जारी थे। मगर साथ ही यह ख़याल पैदा हुआ, "अगर इस्लाम सच्चा मज़हब नहीं है तो क़ियामत में मेरी क्या हालत होगी?" उस वक़्त मैंने ख़ुदा से दुआ माँगी, "इलाही, तू अपना सच्चा मज़हब और सच्चा रास्ता मुझे बता। अगर इस्लाम सच्चा मज़हब है तो तू मुझे उस पर क़ायम रख और मुझे यह तौफ़ीक़ दे कि इस्लाम के मुख़ालिफ़ों के मुँह बंद कर सकूँ। और अगर ईसाई मज़हब सच्चा है तो तू उसकी सच्चाई मुझ पर ज़ाहिर कर। आमीन।"

वापसी और अंजुमन ज़ियाउल-इस्लाम

मदीना की ज़ियारत के बाद मैं बम्बई वापस लौट आया। उतने में नदवतुल-मुतकल्लिमीन बंद हो गया था। इसलिए वापस आकर सबसे पहला काम जो मैंने किया यह था कि नदवतुल-मुतकल्लिमीन के एवज़ एक और अंजुमन बनाम ज़ियाउल-इस्लाम जारी की। इस अंजुमन का सर मैं था। उसका एक क़ानून यह था कि हफ़्ते में एक बार इस्लाम के मुख़ालिफ़ों में से एक अदमी आकर इस्लाम के ख़िलाफ़ लैक्चर दे। फिर हममें से कोई उसका जवाब दे।

ईसाइयों की तरफ़ से मुंशी मंसूर जो क़रीब रहते थे बिलानाग़ा आकर इस्लाम के ख़िलाफ़ लैक्चर देते थे। इसी तरह आरियों की तरफ़ से भी कोई न कोई साहब तशरीफ़ लाते थे।

मुंशी मंसूर से मेरा मुबाहसा

एक रोज़ मुंशी मंसूर ने हमारी अंजुमन में इस मौज़ू पर कि "इस्लाम में नजात नहीं है" एक ज़बरदस्त लैक्चर दिया। अंजुमन के लोगों ने मुझे कहा कि मैं उनका जवाब दूँ। मैं जवाब देने के लिए खड़ा हुआ और अपने इल्म के ज़ोर से यह साबित करना चाहा कि इस्लाम में पूरी और कामिल नजात है। लेकिन मैं सच सच कहता हूँ कि अगरचे सुनने वालों ने मेरे लैक्चर की तारीफ़ की और चारों तरफ़ से वाह वाह होने लगी, लेकिन ख़ुद मुझे मेरे दलायल से इतमीनान न था। मैं लैक्चर के दौरान अपनी कमज़ोरी को ख़ुद महसूस कर रहा था। अगरचे मेरी आवाज़ के सामने मंसूर साहब की आवाज़ धीमी हो गई थी लेकिन मेरे दिल में उनकी आवाज़ इस ज़ोर-शोर से गूँज रही थी जिसका बयान मैं नहीं कर सकता।

नजात मगर कैसे?

मैं दुबारा क़ुरान शरीफ़ और अहादीस की तहक़ीक़ करने लगा। इनमें नजात की तलाश करने से पहले मैंने अपने दोनों हाथों को उठाकर दुआ की, “इलाही! तू जानता है कि मैं मुसलमान हूँ और मुसलमान पैदा हुआ। मेरे आबाओ-अजदाद सैंकड़ों पुश्त से इसी मज़हब में पैदा हुए और इसी में फ़ौत हुए। इसी में मैंने तालीमो-तरबियत पाई। और इसी में मेरी परवरिश हुई। चुनाँचे तू उन तमाम बातों को जो तेरी सच्ची राह की तहक़ीक़ करने से मुझे रोकती हैं मुझसे दूर कर। तू अपनी नजात का रास्ता मुझे बता ताकि जब मैं इस फ़ानी दुनिया से चल बसूँ तो तेरे आगे मलामत के क़ाबिल न ठहरूँ। आमीन।”

क़ुरान शरीफ़ की जो बात मुझे पहले भी मालूम थी उस की दुबारा तस्दीक़ हुई यानी यह कि नजात सिर्फ़ और सिर्फ़ अच्छा काम करने से मिल सकती है,

> فَمَن يَعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ خَيْرًا يَرَهُ وَمَن يَعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ شَرًّا يَرَهُ
>
> (सूरा अज़्ज़लज़ला 6, 7)

यानी जो ज़र्रा-भर अच्छा काम करेगा वह इसका अज्र पाएगा, और जो ज़र्रा-भर बुरा काम करेगा वह इसकी सज़ा पाएगा।

इस क़िस्म की आयात सरसरी नज़र से तसल्लीबख़्श मालूम होती हैं। लेकिन इन को पढ़कर मुझमें यह सवाल पैदा हुआ कि "क्या यह मुमकिन है कि हम नेकी ही नेकी करें और किसी क़िस्म की बदी हमसे सरज़द न हो? क्या इनसान में ऐसी ताक़त है?" जब गहरी नज़र से इस सवाल पर ग़ौर किया और साथ ही इनसानी ताक़त और जज़बात का अंदाज़ा किया तो मालूम हुआ कि इनसान के लिए सरासर मासूम रहना नामुमकिन है।

मेरे दिल में यह सवाल भी पैदा हुआ कि आख़िर हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम भी तो इनसान हैं। जहाँ क़ुरान शरीफ़ में दीगर अंबिया के गुनाह का ज़िक्र है हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के गुनाह का ज़िक्र क्यों नहीं हुआ?

चूँकि क़ुरान शरीफ़ में हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की मासूमियत के सिवा और किसी बात का ज़िक्र न मिला इसलिए मैंने इंजील शरीफ़ की तरफ़ रुजू किया और ज़ैल की आयात मिल गईं,

> क्या तुममें से कोई साबित कर सकता है कि मुझसे कोई गुनाह सरज़द हुआ है? (यूहन्ना 8:46)

> और वह ऐसा इमामे-आज़म नहीं है जो हमारी कमज़ोरियों को देखकर हमदर्दी न दिखाए बल्कि अगरचे वह बेगुनाह रहा तो भी हमारी तरह उसे हर क़िस्म की आज़माइश का सामना करना पड़ा। (इबरानियों 4:15)

काफ़ी और शाफ़ी दलायल से साबित हुआ कि हज़रत ईसा के सिवा इनसान हक़ीक़त में गुनाहगार है। चुनाँचे मैं कौन और मेरी हक़ीक़त क्या जो यह कह सकूँ कि अच्छा काम करने से नजात पा सकता हूँ जबकि दीन के बड़े बड़े मुसलिहान, बड़े बड़े फ़ैलसूफ़, बड़े बड़े मुत्तक़ी इस मैदान में दौड़कर हार गए?

क़ुरान की रू से कोई नजात नहीं पा सकता

उन तमाम आयात में से, जो इस बात पर ज़ोर देती हैं मैं दो आयतें यहाँ पेश करता हूँ जो यह साफ़ बताती हैं कि कोई भी नजात नहीं पा सकता चाहे वह कैसी हैसियत और दर्जे का क्यों न हो ,

> وَإِن مِّنكُمْ إِلَّا وَارِدُهَا ۚ كَانَ عَلَىٰ رَبِّكَ حَتْمًا مَّقْضِيًّا ثُمَّ نُنَجِّي ٱلَّذِينَ ٱتَّقَواْ وَّنَذَرُ ٱلظَّٰلِمِينَ فِيهَا جِثِيًّا۔
>
> (सूरा मरियम 72–73)

यानी तुममें से हर शख़्स उस (दोज़ख़) में जानेवाला है। यह ख़ुदा का ऐसा पक्का वादा है जो होकर रहेगा। और हम मुत्तक़ियों को बचा लेंगे और ज़ालिमों को उस में घुटनों के बल गिरे हुए छोड़ देंगे।

इस आयत के पढ़ने से जिस क़दर ख़ौफ़, दहशत और मायूसी मुझ पर तारी हुई मैं ही जानता हूँ और मेरा दिल जानता है। मैं एक रूहानी मरीज़ था और क़ुरान शरीफ़ को इस नीयत से पढ़ता था कि वह रूहानी डाक्टर की हैसियत से मेरी गुनाहआलूदा फ़ितरत का इलाज बताएगा। लेकिन इलाज बताने के बजाए मुझे साफ़ साफ़ सुनाया कि “तुममें से हर एक जहन्नुम में जाएगा, क्योंकि तेरे रब इस का पक्का फ़ैसला कर चुका है।”

आँहज़रत की ज़बानी आयत की तफ़सीर

लेकिन जो मुहब्बत और उलफ़त मुझे इस्लाम के साथ थी उसने मुझे ज़ाती फ़ैसला करने और जल्दी से काम लेने से रोक दिया। मैंने मुनासिब समझा कि अहादीस में इस आयत की तफ़सीर तलाश करके देखूँ कि ख़ुद आँहज़रत इसके मुताल्लिक़ क्या इरशाद फ़रमाते हैं। तलाश करते करते मुझे ज़ैल की हदीस मिश्कात में मिल गई,

> इब्न मसूद कहते हैं कि आँहज़रत सलअम ने फ़रमाया कि सब लोग दोज़ख़ में दाख़िल होंगे, फिर अपने आमाल के बाइस उससे निकलेंगे। उनके पहले बिजली की चमक की तरह जल्दी निकलेंगे। फिर हवा की तरह। फिर घोड़े की दौड़ की तरह। फिर सवार की तरह। फिर इनसान की दौड़ की तरह। फिर इनसान के पैदल चलने की तरह।[1]

[1] وعن ابن مسعود قال رسول الله صلعم یرد الناس النار ثم یصدرون منها با عمالهم فاولهم کلمه البرق ثم کالریح ثم کحضر الفرس ثم کالراکب فی رحله ثم کشد الرجل ثم کمشیه۔

इस हदीस को तिरमिज़ी और दारिमी ने रिवायत किया है। मिश्कात किताबुल-फ़ितन फ़िल-हौज़ व-अश-शफ़ाअत, सफ़हा 494, मतबुआ मुजतबाई, दहली।

अब इस आयत का मतलब साफ़ हो गया कि तमाम इनसान का एक बार जहन्नुम में जाना लाज़िमी है। फिर लोग अपने अपने आमाल के मुताबिक़ इससे निकलते रहेंगे। क़ुरान शरीफ़ का मतलब साफ़ हो गया और ख़ुद आँहज़रत ने भी इसकी तसदीक़ की। अगर मैं चाहता तो उसी वक़्त अपनी तहक़ीक़ात को बंद करता। लेकिन मैंने यह नहीं किया बल्कि यह बेहतर समझा कि क़ुरान शरीफ़ की मज़कूर आयत की तफ़सीर ख़ुद क़ुरान ही से तलाश करूँ। ढूँडते ढूँडते मुझे यह आयत मिल गई,

> وَلَوْ شَآءَ رَبُّكَ لَجَعَلَ ٱلنَّاسَ أُمَّةً وَٰحِدَةً ۖ وَلَا يَزَالُونَ مُخْتَلِفِينَ إِلَّا مَن رَّحِمَ رَبُّكَ ۚ وَلِذَٰلِكَ خَلَقَهُمْ ۗ وَتَمَّتْ كَلِمَةُ رَبِّكَ لَأَمْلَأَنَّ جَهَنَّمَ مِنَ ٱلْجِنَّةِ وَٱلنَّاسِ أَجْمَعِينَ۔
>
> (सूरा हूद 119–120)

यानी अगर तेरा रब चाहता तो लोगों को एक ही उम्मत बना देता मगर वह हमेशा इख़्तिलाफ़ करते रहेंगे। सिवाए उसके जिस पर तेरा रब रहम करे और इसी ख़ातिर उसने उन्हें पैदा किया था। और

तेरे रब की यह बात भी पूरी हुई कि में ज़रूर जहन्नुम को जिनों और अवामुन-नास सबसे भर दूँगा।[1]

इस आयत को पढ़कर मेरे दिल को ऐसा सदमा पहुँचा कि मैंने क़ुरान शरीफ़ को आहिस्ता से बंद कर दिया और उसी जगह रखकर ख़यालों में ग़रक़ हो गया। ख़ाब में भी चैन न मिला, क्योंकि यह ख़यालात नींद में भी मुझे छेड़ रहे थे। मेरा दिल बहुत ही मुज़तरिब और बेक़रार था। लेकिन इस्लाम को छोड़ना मेरे लिए निहायत मुश्किल था। जान देना मुझे मंज़ूर था, लेकिन इस्लाम को छोड़ना नामंज़ूर। मैं इसी तरह कुछ देर तक सोचता रहा। और इस तलाश में रहा कि अगर कोई भी सहारा मुझे मिल जाए तो मैं इस्लाम को हरगिज़ नहीं छोड़ूँगा। इसी नीयत से अहादीस का सहारा ढूँडने लगा मगर एक भी न मिली।

अलबत्ता अबी-ज़र एक हदीस बयान करते हैं जो फ़रमाती है कि ज़िनाकार और चोर सिर्फ़ कलिमा पढ़ने से ही नजात पाता है। वह यह है,

> अबी-ज़र ने कहा, मैं आँहज़रत सलअम के पास आया। आप सो रहे थे, और आप पर सफ़ेद कपड़ा था। जब मैं फिर आया तो आप जागते थे। आपने

[1] अब आप इस तालीम का इंजील जलील, यूहन्ना 3:16 से मुक़ाबला करें। तब आपको मालूम होगा कि नजात किसमें है।

> फ़रमाया कि हर एक बंदा जो ला इलाहा इल्लल्लाह कहे और इस पर मर जाए वह जन्नत में दाख़िल होगा। मैंने पूछा, अगरचे ज़िनाकार या चोर हो? आपने फ़रमाया, अगरचे वह ज़िनाकार या चोर हो। मैंने पूछा, अगरचे चोर या ज़ानी हो? आपने फ़रमाया, अगरचे वह ज़िनाकार या चोर हो। मैंने पूछा, अगरचे वह ज़िनाकार या चोर हो? आपने फ़रमाया, अगरचे वह ज़िनाकार या चोर हो। यह बात अबू-ज़र को ना-गवार मालूम होती है।[1]

आमाल से पैग़ंबर भी नजात नहीं पा सकते

एक और हदीस में मैंने पढ़ा,

> अबी-ज़र ने कहा, आँहज़रत सलअम ने फ़रमाया कि हरगिज़ तुममें से किसी को उसका अमल नजात

[1] وعن ابی ذر قال اتیت النبی صلعم ثوب ابیض وَهوا نائم ثم اتیته وقد استقیظ فقالا ما من عبد قالا لا اِلٰهَ الّا اللہ ثم مات علیٰ ذالک لا دخل الجنة قلت وان زنی وسرق قالا وان زنی و سرق قلت وان زنی وان سرق قالا وان زنی و ان سرق قلت وان زنی و ان سرق قالا وان زنی وان سرق علی رغم انف ابی ذر کان ابو ذر اذا احدث بهذا قالا وان رغم انف ابی ذر متفق علیه۔

> नहीं दे सकता। लोगों ने कहा, आपको भी नजात नहीं दे सकता? आपने कहा कि नहीं, मगर जब ख़ुदा मुझे अपनी रहमत में छुपा ले। चुनाँचे मज़बूत रहो और कोशिश करो और सुबहो-शाम और हर वक़्त अमल में कोशिश करो।[1]

इन अहादीस में मुझे यह बात मालूम हुई कि ख़ुदा के रहम के बग़ैर कोई भी नजात नहीं पा सकता। इससे मुझे एक तरह से तसल्ली तो मिल गई, लेकिन साथ ही यह सवाल भी पैदा हुआ कि अगर ख़ुदा रहीम है तो वह इनसाफ़ करने वाला भी है। अगर ख़ुदा सिर्फ़ अपने रहम से माफ़ कर दे तो उसका इनसाफ़ कहाँ रहेगा? अगर उसका इनसाफ़ काम में न आए तो ख़ुदा की ज़ात में नुक़्स होगा। यह तो हो ही नहीं सकता।

तीसरी बात जो मुझे अहादीस से मालूम हुई यह थी कि आँहज़रत भी किसी को नहीं बचा सकते यहाँ तक कि अपने रिश्तेदारों और अपनी बेटी फ़ातिमा को भी बचाने से क़ासिर हैं। यह ख़याल कि क़ियामत के दिन आँहज़रत शफ़ाअत यानी लोगों की सिफ़ारिश करेंगे ग़लत निकला। वह हदीस यह है,

---

[1] وعن ابی حریرہ قالا قالا رسول اللہ صلعم لن ینج احداً منکم عملہ قالو ولا انت یا رسول اللہ قالا ولا انا الا ان یتغمدنی اللہ منہ برحمہ فسددوا وقار بواوعدو اور وحوا و شیء من الدلجۃ والقصد تبغلوا متفق علیہ۔ (बुख़ारी)

> रावियाने-मज़कूर अबू-हुरैरा से रिवायत करते हैं कि आँहज़रत पर जब यह आयत नाज़िल हुई, "अपने क़रीबतर रिश्तेदारों को डरा" तो आँहज़रत खड़े होकर फ़रमाने लगे, "ऐ क़ुरैश के लोगो! ऐ अब्द-मुनाफ़ के बेटो! ऐ अब्बास अब्दुल-मुतल्लिब के बेटे! ऐ सफ़िया मेरी फूफी! मैं तुमको क़ियामत के अज़ाब से नहीं बचा सकता। तुम ख़ुद अपनी फ़िकर कर लो। ऐ मेरी बेटी फ़ातिमा! तू मेरे माल से सवाल कर सकती है। लेकिन मैं तुमको ख़ुदा से नहीं बचा सकता। तू अपनी फ़िकर आप ही कर।"[1]

अहादीस की वसी और दक़ीक़ छानबीन के बाद मज़ीद इंतज़ार करने का फ़ायदा न था। मैंने मायूसी और हसरत के साथ अहादीस

---

[1] حدثنا ابو یمان قال اخبرنا شعیب عن الذہری قال اخبرنی سعید بن المسیب وابو سلمہ بن عبد الرحمٰن ان ابا ہریرہ قالا قام رسول اللہ صلعم حین انزل اللہ وانذر عشیرتک الاقربین۔ قال یا معشر قریش او کلمۃ نحوھا اشترو انفسکم لا اغنی عنجم من اللہ شیئاً یا بنی عبد مناف لا اغنی عنکم شیئاً۔ یا عباس بن عبد المطلّب لا اغنی عنکم من اللہ شیئاً ویا فطمہ بنت محمد صلعم سلینی ما شئت من مالی ما اغنی عنک من اللہ شیئاً۔

(बुख़ारी, सफ़हा 702 मतबुआ कर्ज़न गज़ट, दहली)

को भी बंद कर दिया और यों दुआ करने लगा, “ऐ ख़ुदा, तू मेरा ख़ालिक़ो-मालिक है जो मेरे दिल के कुल राज़ों से मुझसे ज़्यादा वाक़िफ़ है। तू जानता है कि मैं बड़ी देर से तेरे सच्चे मज़हब की तलाश में रहा हूँ। जो कुछ मुझसे हो सका मैंने तहक़ीक़ की। अब तू मुझ पर अपने इरफ़ान और नजात का दरवाज़ा खोल दे। मुझे उन लोगों मे शामिल कर जो तुझे मंज़ूरे हैं ताकि जब मैं तेरे हुज़ूर आऊँ तो सरफ़राज़ हूँ। आमीन।”

इंजील में मुझे नजात मिल गई

इस हालते-रंजो-अलम में मैं फिर एक बार इंजीले-मुक़द्दस को उठाकर पढ़ने लगा। ख़याल यह था कि अगर मेरी तहक़ीक़ात में ग़लती रह गई हो तो उसकी इसलाह हो जाए। अब की बार इंजीले-मुक़द्दस खोलते ही जिस आयत पर मेरी नज़र पड़ी वह यह थी,

> ऐ थके-माँदे और बोझ तले दबे हुए लोगो, सब मेरे पास आओ! मैं तुमको आराम दूँगा। (मत्ती 11:28)

मैं नहीं कह सकता कि किस तरह इंजील का यह हवाला खुल गया और इस आयत पर मेरी निगाह पड़ गई। न मैंने क़स्दन इस हवाले को खोला था और न यह इत्तफ़ाक़न हुआ बल्कि यह ख़ुदा की तरफ़ से मेरी सख़्त मेहनत और सच्ची तहक़ीक़ात का जवाब था।

मुझ पर इस आयत का बहुत बड़ा असर हुआ। दिल में तसल्ली, इतमीनान और सरूर पैदा हो गया। दिल की बेक़रारी और इज़्तराब यकदम ग़ायब हो गए।

अब मैं खुले ज़हन से इंजील का मुतालआ करने लगा। मैंने उसे शुरू से आख़िर तक कई बार पढ़ा। मुझे सैंकड़ों ऐसी आयतें और बीसियों ऐसी तमसीलें मिलीं जिनके पढ़ने से मुझे पूरा पूरा यक़ीन हो गया कि नजात जो मज़हब का आख़िरी मक़सद और उसकी जान है सिर्फ़ ख़ुदावंद ईसा मसीह पर ईमान रखने से हासिल हो सकती है।

इन तमाम तहक़ीक़ात के बाद मैंने फ़ैसला किया कि अब मैं हज़रत ईसा का पैरोकार हो जाऊँगा। मैंने यह भी मुनासिब समझा कि अपने ख़यालात को अपनी अंजुमन में पेश करूँ ताकि इस पर अगर चाहें तो बहस भी करें और ख़ुफ़िया तहक़ीक़ात का इलज़ाम मेरे सर से हट जाए।

मैं मामूल के मताबिक़ अंजुमन में गया। आज फिर मंसूर साहब की बारी थी। मगर मैंने यह कहकर उनको रोक दिया कि आज शाम को मैं ख़ुद इस्लाम का मुख़ालिफ़ होकर तक़रीर करूँगा।

मैंने खड़े होकर अपनी दस-साला तहक़ीक़ात पर तक़रीर की। हाज़िरीन सुनकर दंग रह गए। उन्हें सिर्फ़ इस बात की तसल्ली थी कि जैसी तक़रीर मैंने की है वैसा ही जवाब भी दे दूँगा। जब मैंने अपनी तक़रीर ख़त्म कर ली और बैठ गया तो सदरे-सानी साहब

ने कहा कि हम उम्मीद करते हैं कि ख़ुद सदर साहब ही अपनी तक़रीर का जवाब भी दे देंगे।

मैं हज़रत ईसा का पैरोकार हो गया

तब मैंने खड़े होकर कहा कि मेरे दोस्तो, सुनो! जो कुछ मैंने आपके सामने बयान किया है ज़ाहिरी या मसनुई नहीं है। यह तक़रीर मेरी दस-साला तहक़ीक़ात पर मबनी है। और ख़ासकर उस दिन से जबकि जनाब मंसूर ने नजात पर लैक्चर दिया था। मैंने ख़ुदा से यह अहद कर लिया था कि आज से मैं किताबे-मुक़द्दस को इस नीयत से नहीं पढ़ूँगा जिस तरह कि पेशतर पढ़ा करता था। बल्कि खुले ज़हन से, इस नीयत और मक़सद से पढ़ूँगा कि सचाई मुझ पर ज़ाहिर हो जाए। तब मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि नजात सिर्फ़ ईसाई ईमान में ही है और बस।

यह कहकर मैं वहाँ से चला गया, क्योंकि वहाँ ठहरना मुनासिब नहीं था। मुझे निकलते देखकर मंसूर भी मेरे पीछे पीछे हो लिए। जब मेरे पास पहुँच गए तो दोनों हाथ मेरे गले में डालकर ख़ुशी के आँसू बहाने लगे और थर्राई हुई आवाज़ से कहने लगे, “आज रात आप मेरे मकान में आकर सोएँ, क्योंकि आपका तनहा मकान में रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं है।”

मैंने उनसे कहा, “मेरी अंजुमन के लोग शायस्ता और तालीमयाफ़्ता हैं। उनसे मुझे किसी क़िस्म का ख़ौफ़ और ख़तरा नहीं है। लेकिन अवाम का ख़तरा है, इसलिए मैं सुबह-सवेरे अंधेरे ही में आपके मकान पर आऊँगा। और अगर उस वक़्त तक मैं न आया तो आप ख़ुद मेरे पास तशरीफ़ लाएँ।”

यह कहकर हम दोनों एक दूसरे से रुख़सत हुए। मैं अपने मकान में आकर दरवाज़ा अंदर से बंद करके चराग़ बुझाकर फ़िकरों में मुब्तला बैठ गया। मैं उस डरावनी रात और उसके रूहानी कशमकश को कभी न भूलूँगा।

सुबह होते ही मुँह-हाथ धोकर मैं मंसूर साहब की तरफ़ रवाना हुआ। जब मैं उनके मकान पर पहुँचा तो वह मेरे इंतज़ार में परेशान थे। उनको मालूम था कि मुझे चाय पीने की सख़्त आदत है। चाय तैयार रखी थी। चाय पीकर मुख़तसर बातचीत के बाद हम दुआ में मशग़ूल हुए। दुआ के बाद पादरी कैनन लीजर्ड के बँगले पर गए।

पादरी साहब हमारी इस बेवक़्त आमद से हैरान हुए, लेकिन दफ़्तर में जाते ही मंसूर ने उनसे कहा कि मौलवी साहब बपतिस्मा लेने के लिए आए हैं। पहले तो पादरी साहब ने इसको एक मज़ाक़ समझा, लेकिन जब उनके सामने गुज़री रात का वाक़िया बयान किया तो बेइख़्तियार उठकर गले लगाकर कहने लगे, “मुझे यक़ीन था कि अगर आपने ग़ौर से किताबे-मुक़द्दस को पढ़ा तो ज़रूर

हज़रत ईसा के पैरोकार हो जाएँगे। अब ख़ुदा का शुक्र है कि आप इसके क़ायल हो गए।"

यह कहकर उन्होंने तीन रोज़ के बाद बपतिस्मा देने का वादा किया। वह कहने लगे, "अब मैं आपको वापस जाकर मुसलमानों में रहने का मशवरा नहीं देता। या तो आप मेरे साथ रहें या मंसूर साहब के साथ।" मैं मंसूर साहब के साथ रहने के लिए राज़ी हुआ।

जब इतवार का दिन आया तो सारी इबादतगाह मुसलमानों से भर गया। इस ख़तरे को देखकर पादरी साहब ने बपतिस्मा मुलतवी कर दिया। आख़िरकार ख़ुदा के फ़ज़ल और करम से 6 अगस्त 1903 को मेरा बपतिस्मा सेंट पाल्ज़ चर्च में हो गया।

नाज़िरीन! जब मैं ईसाई होकर अल्लाह की क़ौम में दाख़िल हो गया तो एक अजीब इनक़लाब मुझमें पैदा हुआ। मेरा पूरा चाल-चलन बदल गया। यहाँ तक कि एक साल के बाद जब मैं चंद दिनों के लिए बम्बई गया तो ख़ुद वहाँ के मुसलमानों ने मेरे हक़ में यह कहा, "यह अदमी बिलकुल बदल गया है। यह किस क़दर ग़ुसीला और अब किस क़दर हलीम हो गया है।"

अगरचे मैं पहले भी गुनाह को गुनाह समझता था, लेकिन उसको इस क़दर ख़तरनाक और मोहलक नहीं समझता था जिस क़दर कि अब समझता हूँ। अब भी मैं एक कमज़ोर इनसान हूँ और मुझसे अकसर सहवन ख़ताएँ सरज़द होती हैं, लेकिन साथ ही जिस क़दर रंज और ग़म, शर्म और अफ़सोस मेरे दिल में पैदा होते हैं मैं बयान

नहीं कर सकता। उसी वक़्त मुँह के बल गिरकर ज़ार ज़ार रोकर तौबा करता हूँ और माफ़ी चाहता हूँ। यह बात रब्बुना अल-मसीह के कफ़्फ़ारा के सिवा और किसी तरह से हासिल नहीं हो सकती।

गुनाह सिर्फ़ तौबा ही से दूर नहीं हो सकता बल्कि लाज़िम है कि हमारे आक़ा के मुक़द्दस ख़ून से साफ़ किया जाए। यही वजह है कि दुनिया आए दिन गुनाह को एक मामूली बात समझकर हलाकत के क़रीब होती जा रही है।